International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN : 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

देवदासी प्रथा और हिन्दू समाज

डॉ. प्रियंका

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
महारानी किशोरी मेमोरियल कन्या महाविद्यालय, होडल, हरियाणा

प्राचीन समय से ही हमारे समाज में तमाम कुरीतियों और अंधविश्वासों का बोलबाला रहा है। समाज में आज भी कुछ ऐसी कुरीतियों और अंधविश्वासों का अभ्यास व्यापक पैमाने पर किया जाता है जो 21वीं सदी के मानव समाज के लिए शर्मसार करने वाली है इन्हीं कुरीतियों में से एक है। 'देवदासी प्रथा' धर्म के नाम पर औरतों के शोषण का सिलसिला हजारों वर्षों से जारी है। भारत में सबसे पहले देवदासी प्रथा के अंतर्गत धर्म के नाम पर औरतों के यौन शोषण को संस्थागत रूप दिया गया था। इतिहास और मानव विज्ञान के अध्ययनों के अनुसार देवदासी प्रथा संभवत छठी सदी में शुरू हुई थी ऐसा माना जाता है कि अधिकांश पुराण भी इसी काल में लिखे गए। देवदासी प्रथा यूं तो भारत में हजारों साल पुरानी है पर वक्त के साथ इसका मूल रूप बदलता गया कानूनी तौर पर रोक के बावजूद कई इलाकों में इसके जारी रहने की खबरें आती ही रहती हैं। इस प्रथा के तहत कुंवारी लड़कियों को धर्म के नाम पर ईश्वर के साथ ब्याह करा कर मंदिरों को दान कर दिया जाता है। माता पिता अपनी बेटी का विवाह देवता या मंदिर के साथ कर देते हैं। परिवारों द्वारा कोई मुराद पूरी होने के बाद ऐसा किया जाता है। देवता से ब्याही इन महिलाओं को ही देवदासी कहा जाता है। इन्हें जीवन भर इसी तरह रहना पड़ता है। मत्स्य पुराण विष्णु पुराण और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी देवदासी प्रथा का उल्लेख मिलता है। देवदासी देवता मंदिर की देखरेख पूजा पाठ की तैयारियां मंदिर में नृत्य आदि के लिए थी।

कालिदास ने मेघदूत में मंदिरों में नृत्य करने वाली आजीवन कुंवारी कन्याओं की चर्चा की है। संभवत इन्हें देवदासी ही माना जाता है प्रख्यात लेखक दुबॉइस ने अपनी पुस्तक हिंदू मैनर्स कस्टम्स एंड सेरेमनीज में लिखा है कि प्रत्येक देवदासी को देवालय में नाचना गाना पढ़ता था। साथ ही मंदिरों में आने वाले खास मेहमानों के साथ शयन करना पड़ता था। उसके बदले में उन्हें अनाज या धनराशि दी जाती थी प्राय देवदासियों की नियुक्ति मासिक अथवा वार्षिक वेतन पर की जाती थी।

देवदासियों को अतीत की बात मान लेना गलत होगा। दक्षिण भारतीय मंदिरों में किसी न किसी रूप में आज भी उनका अस्तित्व स्वतंत्रता के बाद 35 वर्ष की अवधि में ही लगभग डेढ़ लाख कन्याएं देवी देवताओं को समर्पित की गई। ऐसी बात नहीं है कि अब यह प्रथा पूरी तरह समाप्त हो गई है अभी भी यह कई रूपों में जारी है कर्नाटक सरकार ने 1982 में और आंध्र प्रदेश सरकार ने 1988 में इस प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर दिया था। लेकिन मंदिरों में देवदासियों का गुजारा बहुत पहले से ही मुश्किल हो गया था। 1990 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 45 फीसदी देवदासियां महानगरों में वेश्यावृत्ति संलग्न मिली, बाकी ग्रामीण क्षेत्रों में खेतिहर मजदूरी और दिहाड़ी पर काम करती पाई गई।

देवदासी प्रथा मुख्य रूप से कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और उड़ीसा में फली फूली । कर्नाटक में तो इसके साथ नग्न पूजा का एक और उत्सव जुड़ गया। बेल्लारी और चंद्रगुति में हजारों की संख्या में स्त्री और पुरुष पूर्णत नग्न होकर नदी में स्नान करने के बाद अपनी मनौती पूरी करने कराने देवी दर्शन को जाते। इसे कवर करने के लिए विदेशी मीडिया का जमावड़ा लग जाता। इस कुप्रथा को समाप्त करने के लिए सामाजिक संगठनों ने आंदोलन शुरू किया पर उन्हें पुजारियों और अंधविश्वासी

लोगों का विरोध झेलना पड़ा। पूजा का यह अश्लील विधान अभी भी कमाबेश जारी है। गोवा और राजस्थान में भी देवदासियां मिलती हैं मंदिरों में शरण नहीं मिल पाने के कारण लगभग 80 फ़ीसदी देवदासियां महानगरों में पहुंच गई है। अधेड़ और बूढ़ी देवदासियां देवी येल्लम्मा के नाम पर भिक्षाटन कर पेट पालती है।

देवदासी बनाए जाने के पीछे की साजिशों और छिपे उद्देश्यों को मोहनदास नैमिशराय जी ने अच्छी तरह व्यक्त किया है। पार्वती नामक वेश्या का परिचय देती हुई शबनम बाई बताती है। "यह पार्वती है बिना शिव की पार्वती, शिव ने पहले इसे मंदिर में बैठाकर देवदासी बनाया फिर मंदिर से चकले में भेज दिया, अब रात के रात में काले चोर के रूप में देवता आते हैं और इस देवी को भोगते हैं। देवदासी बनाए जाने के कारणों की चर्चा नैमिशराय जी करते हैं। वह क्यों देवदासी बनी? वह अपनी मर्जी से कहा बनी देवदासी? उसे तो बस बना दिया था देवदासी नहीं भोगदासी। उस समय उसके भीतर इतनी समझ भी कहां थी। नरक की क्रूरता और स्वर्ग की सतरंगी कल्पना से सरोवर रहती थी, जिस मंदिर में उनकी जाति के लोग प्रवेश नहीं कर सकते, उसी में पूजा पाठ कीर्तन भजन नृत्य अच्छा लगता था। रूप, रस, गंध इन सब से प्रभावित भी था शिव पार्वती के प्रणय को उन्मुक्त। "देवदासी को कोई भी रखे,देवता कुपित नहीं होते थे। पर दलित समाज की कोई लड़की देवदासी ना बने तो वह नाराज हो जाते थे। देवदासी अनुष्ठान धार्मिक उत्सव की तरह बनाए जाते हैं गरीब धार्मिक अंधविश्वास उच्च वर्गों द्वारा दलितों को दबाये रखने की प्रवृत्ति इस प्रथा के मूल में भी जिसे नैमिशराय जी ने व्यक्त किया।

यूरोपीय काल में वर्ष 1926 में मैसूर विधानसभा ने कानून पास कर राज्य में इस प्रथा पर रोक लगा दी थी। 3 वर्ष बाद मद्रास विधानसभा में एक विधायक पारित कर मद्रास प्रेसिडेंसी में देवदासी के रूप में हिंदू मंदिरों में कुमारियों के समर्पण की प्रथा को समाप्त कर दिया। इसके पूर्व तृतीय मैसूर युद्ध (1790 -1792) की समाप्ति पर टीपू सुल्तान ने लड़के- लड़कियों के मंदिर में दान किए जाने पर रोक लगा दी थी और राज्य के पुनर्गठन के लिए उनका उपयोग खेती सेना आदि के लिए किया था।

भारत में देवदासी प्रथा का आरंभ कब से हुआ इस संबंध में कोई ऐतिहासिक दस्तावेज प्राप्त नहीं होते लेकिन देवदासी प्रथा का सर्वप्रथम उल्लेख पुराणों में मिलता है। पदमपुराण में देवदासियों को दान रूप में देने की बात कही गई है परंपरा के अनुसार देवदासी के रूप में देवता को उस कन्या को समर्पित किया जाता था जो रजस्वला ना हुई हो। इन देवदासियों को अलौकिक विवाह की अनुमति नहीं थी। भारत के विभिन्न भागों में आज भी देवदासी प्रथा विधमान है। देवदासी को अखंड सौभाग्यवती अथवा नित्य सुमंगली कहा जाता है। दक्षिण भारत के मंदिरों में प्राचीन काल में देवदासी समर्पण का एक भव्य उत्सव होता था।

मंदिर को समर्पित कुमारियों को मंदिर के देवता के साथ कृतिम विवाह कर उन्हें आजीवन मंदिर की सेवा में रख लिया जाता था। इसके बदले उन्हें जीवन निर्वाह हेतु कुछ भत्ता भी मिलता था। यह कुमारिया विवाह नहीं कर सकती थी। कालांतर में इसकी विकृतियां आती गई और देवदासी प्रथा वेश्यावृत्ति में बदल गई। देवदासियों को वेश्यावृत्ति से जो कुछ उत्पादन होता था उसका कुछ हिस्सा निकालकर बाकी सब मंदिर को अर्पित करना होता था।
महाकाव्यों में आए विभिन्न प्रसंगों से पता चलता है। कि नौवीं, दसवीं शताब्दी तक भारत के अलग-अलग भागों में देवदासी प्रथा अपनी जड़ें जमा चुकी थी। ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में अपनी भारत यात्रा के दौरान मुल्तान के सूर्य मंदिर में देवदासियों का नृत्य देखा था। अलबरूनी ने अपने चरणों में लिखा था मंदिरों में देवदासियां बाहर के लोगों से संबंध के बदले में धन लेती थी। अरब यात्री अबूज़ैद अलहसन 887 ई में भारत आया था, ने लिखा है कि देवदासियां वैश्यावृति से जो कुछ भी कमाती थी वह मंदिर की व्यवस्था और रखरखाव के लिए पुजारियों द्वारा खर्च किया जाता था। स्पष्ट है। की देवदासी प्रथा अत्यंत प्राचीन है फिर भी ग्यारहवीं शताब्दी के बीच देवदासी प्रथा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। चोल राजा के बनाये गए तंजौर के मंदिर में 12 वीं शताब्दी

के 400 देवदासियां थी जिन्हें बाद में चोल साम्राज्य के विभिन्न मंदिरों में देव सेवा के लिए भेज दिया गया। इन 400 देवदासियों के नाम मंदिर की दीवारों पर उत्कीर्ण किए गए। चौदहवी शताब्दी आते-आते देवदासी प्रथा ने दक्षिण भारत समाज में अपनी गहरी जड़े जमा ली थी। इस प्रथा को धर्माश्रय के साथ-साथ राजाश्रय भी मिला। तंजौर के मंदिर की 400 देशवासियों को शिक्षा देने के लिए नृत्य गुरुओं की नियुक्ति की गई थी। देवदासियों को नृत्य शिक्षकों और पारश्रमिक में धान (चावल) दिए जाने का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है।

भारत के विभिन्न भागों में देवदासियों को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है उड़ीसा में इन्हें म्हारी कहा गया अर्थात वे महान नारियां जो अपने अलौकिक वासनाओं पर नियंत्रण रख सकती है। इन देवदासियों के प्रश्रय में ओडीसी नृत्य कला फली फूली ओडीसी नृत्य गुरु जो स्वयं म्हारी परिवार से संबंध थे उनके अनुसार म्हारी का अर्थ है। महारिपु -आरी जो पांच महान शत्रुओं (पचेन्द्रिय) पर विजय प्राप्त कर चुका है। कर्नाटक में देवदासियों को 'येल्लम्मा' के अनुयाई के रूप में जाना जाता है महाराष्ट्र देवदासियां मुरली कहलाती हैं।

एक सामाजिक यथार्थ यह भी है। कि देवदासियों के रूप में मंदिर और अपनी संतान समर्पित करने वाले अधिकांश परिवार दलित, निर्धन तथा अन्य निम्न कही जाने वाली जातियों से संबंध थे। अशिक्षा तथा निर्धनता इन परिवारों में इतनी थी कि वे अपनी सर्वाधिक प्रिय कन्या को मंदिर में दान करने को आस्था से जोड़कर देखते थे। उनका मानना था कि यदि वे कन्या को समर्पित नहीं करेंगे तो देवता कभी न कभी उसे अवश्य दंड देगा। इस प्रकार धर्माश्रय और राजाश्रय ,सामाजिक स्वीकृति तथा मोक्ष प्राप्त करने की लालसा ने सदियों तक देवदासी प्रथा को दक्षिण के मंदिरों में जीवित रखा।

मध्य युग में देवदासी प्रथा और भी परवान चढ़ी। सन 1351 में भारत भ्रमण के लिए आए अरब के 2 जातियों ने वेश्याओं को ही देवदासी कहा। उन्होंने लिखा है कि संतान की मनोकामना रखने वाली औरत को यदि सुंदर पुत्री हुई तो वह 'बोंड' नाम से जाने वाली मूर्ति को उसे समर्पित कर देती है। वह कन्या रजस्वला होने के बाद किसी सार्वजनिक स्थान पर निवास करने लगती है और वहां से गुजरने वाले राहगीरों से, चाहे वह किसी भी धर्म अथवा संप्रदाय के हो, मोलभाव कर कीमत तय कर उनके साथ संभोग करती है। यह राशि वह मंदिर के पुजारी को सौंप देती थी।

यह एक रोचक तथ्य है। कि इस्लाम के कुछ पंथो में भी आराधना स्थलों में कन्या अर्पित करने की प्रथा शुरू हो गई लखनऊ में ऐसी कन्याओं को अछूती कहा जाता है। इस बात का प्रमाण है कि शहर की 'अछूती गली'। यही नहीं, बौद्ध संप्रदायों में भी देवदासियों का होना पाया गया है। छत्तीसगढ़ के बौद्ध विहारों में ऐसी भिक्षुणीयो के होने के साक्ष्य मिलते हैं। ऐसा लगता है कि इनका इस्तेमाल भोग विलास और आमोद प्रमोद के लिए किया जाता था।

प्रसिद्ध इतिहासकार विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'भारतीय विवाह संस्था का इतिहास', देवराज चानना की पुस्तक 'स्लेवरी इन एंशियंट इंडिया', एस एन सिन्हा और एन के बसु की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ प्रॉस्टिट्यूशन इन इंडिया', एफ ए मार्गलीन की पुस्तक 'वाइव्ज़ ऑफ द किंग गॉड, रिचुअल्स ऑफ देवदासी', मोतीचंद्रा की 'स्टडीज इन द कल्ट ऑफ मदर गॉडेस इन एंशियंट इंडिया', बी डी सात्सोकर की 'हिस्ट्री ऑफ देवदासी सिस्टम' में इस कुप्रथा पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। जेम्स जे फ्रेजर के ग्रंथ 'द गोल्डन बो' में भी इस प्रथा का विस्तृत ऐतिहासिक विश्लेषण मिलता है। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार ने भी अपनी महत्तवपूर्ण पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' के दूसरे भाग में देवदासी प्रथा पर विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इनके अलावा, कई इतिहासकारों. समाजशास्त्रियों, मानव-वैज्ञानिकों और पत्रकारों ने इस विषय पर यथेष्ट लेखन किया है।

धारवाड़ (कर्नाटक यूनिवर्सिटी) के इतिहास के प्रोफेसर डॉ. एस.एस.शेट्टर ने देवदासी प्रथा पर व्यापक अध्ययन और शोध किया है। उन्होंने कन्नड़ में इस विषय पर फिल्म भी बनाई है। प्रो.शेट्टर के अनुसार यह तय कर पाना कठिन है कि देवदासी प्रथा की शुरुआत कब हुई। बहरहाल, विविध स्रोतों से यह जानकारी मिलती है कि यह प्रथा पिछले दो हज़ार वर्षों से अलग-अलग रूपों में अस्तित्व में है। मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में देवदासी का उल्लेख मिलता है। विद्वानों का मानना है कि देवदासी शब्द का प्रथम प्रयोग कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में किया।

हाल ही में नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी (NLSIU) मुंबई और टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज (TISS) बेंगलुरु द्वारा देवदासी प्रथा पर दो नए अध्ययन किए गए। ये अध्ययन देवदासी प्रथा पर नकेल कसने हेतु विधायिका और प्रवर्तन एजेंसियों के उदासीन दृष्टिकोण की एक निष्ठुर तस्वीर पेश करते हैं।

कर्नाटक देवदासी (समर्पण का प्रतिषेध) अधिनियम, 1982 (Karnatka Devdasis (prohibition of dedication) act of 1982) के 36 वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद भी राज्य सरकार द्वारा इस कानून के संचालन हेतु नियमों को जारी करना बाकी है। जो कहीं ना कहीं इस कुप्रथा को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध हो रहा है। देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए सेवक के रूप में युवा लड़कियों को मंदिर में समर्पित करने की यह कुप्रथा न केवल कर्नाटक में बनी हुई है, बल्कि पड़ोसी राज्यों में भी फैलती जा रही है। अध्ययन के अनुसार मानसिक या शारीरिक रूप से कमजोर लड़कियां इस कुप्रथा के लिए सबसे आसान शिकार है। नेशनल लॉ स्कूल आफ इंडिया यूनिवर्सिटी (NLSIU) के अध्ययन की हिस्सा रही पांच देवदासियों में से एक ऐसी ही किसी कमजोरी से पीड़ित पाई गई। NLSIU के शोधकर्ताओं ने पाया कि सामाजिक आर्थिक रूप से हाशिए पर स्थित समुदायों की लड़कियां इस कुप्रथा की शिकार बनती रही है जिसके बाद उन्हें देह व्यापार के दलदल में झोंक दिया जाता है। TISS के शोधकर्ताओं ने इस बात पर जोर दिया कि देवदासी प्रथा को परिवार और उनके समुदाय से प्रथागत मंजूरी मिलती है।

व्यापक पैमाने पर इस प्रथा के अपनाए जाने और यौन हिंसा से जुड़े होने के तमाम संबंधी साक्ष्य के बावजूद हालिया कानून जैसे कि यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण (POCSO) अधिनियम 2012 और किशोर न्याय अधिनियम 2015 में बच्चों के यौन शोषण के रूप में इस कुप्रथा का कोई सन्दर्भ नहीं दिया गया है। भारत के अनैतिक तस्करी रोकथाम कानून या व्यक्तियों की तस्करी (रोकथाम संरक्षण और पुनर्वास) विधेयक 2018 में भी देवदासियों को यौन उद्देश्य हेतु तस्करी के शिकार के रूप में चिन्हित नहीं किया गया है। अध्ययन ने रेखांकित किया है कि समाज के कमजोर वर्गों के लिए आजीविका स्रोतों को बढ़ाने में राज्य की विफलता भी इस प्रथा की निरंतरता को बढ़ावा दे रही है।

बहरहाल, आज भी यह समस्या खासकर दक्षिण के राज्यों में बनी हुई है। और इस पर काबू पाना सरकारों के वश में नहीं रह गया है। दिल्ली, मुंबई और अन्य महानगरों में देह-व्यापार के दलदल में देवदासी कही जाने वाली स्त्रियों को धकेला जा रहा है। इनकी खरीद-फ़रोख्त हो रही है। पहले भी देवदासियों का कोई सम्मान नहीं था, पर इन्हें संरक्षण हासिल था। लेकिन आज तो इनका जीवन पूरी तरह असुरक्षित है।

निष्कर्षत: हम अतीत को बदल नहीं सकते किंतु वर्तमान को सुधार जरूर सकते हैं। आज के समय में जहां स्त्री विमर्श की चर्चा जोरों पर है। महिलाओं को समाज में उनके अधिकार दिलाने व उन्हें जागरूक करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग है। कई सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएं हैं। जो स्त्रियों के सामाजिक, शैक्षणिक आदि विकास के लिए प्रयासरत हैं। उसके बाद भी आज

भी देवदासियां क्यों बची हुई हैं? उन्हें सामाजिक स्वीकृति क्यों नहीं प्राप्त हैं? आखिर कब तक उन्हें मजबूरीवश जीवन यापन करने के लिए वेश्यावृत्ति को पेशे के रूप में अपनाना पड़ेगा।

सूची:

आसियेन रलासियो द लिंद ए दलाशीन, पृ. 109
दलित साहित्य आज बाजार बंद है पृ 300
हिस्ट्री ऑफ देवदासी सिस्टम
स्लेवरी इन एंशियंट इंडिया
हिस्ट्री ऑफ प्रॉस्टिट्यूशन इन इंडिया